उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ जनवरी—१९८५ अंक—१

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवनसदस्य	२०० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	३० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं; वे यन्त्री हैं, मैं यन्त्र हूँ—यह विश्वास यदि किसी में आ जाए तब तो वह जीवन्मुक्त ही हो गया। "हे प्रभो, तुम्हारा कर्म तुम्हीं करते हो, पर लोग कहते हैं मैं करता हूँ।"

(२)

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—मानुष और 'मन-होश'। जो मनुष्य भगवान के लिए व्याकुल होते हैं वे 'मन-होश' हैं; और जो 'कामिनी-कांचन' के पीछे पागल बने रहते हैं वे साधारण मानुष हैं।

(३)

जो सब की दृष्टि से दूर एकान्त में भी 'भगवान देख रहे हैं' इस भय से कोई अधर्म-आचरण नहीं करता, वही यथार्थ धार्मिक है। निर्जन वन में सुन्दर नवयुवती को अकेली देखकर भी जो धर्म के भय से भीत होकर उस पर कुदृष्टि नहीं डालता, वही यथार्थ धार्मिक है। जो वीरान में, किसी उजड़े घर में मुहरों से भरी थैली देखकर भी उसे उठाने के मोह को रोक सकता है, वही ठीक धार्मिक है। जो केवल दिखाने भर के लिए या 'लोग क्या कहेंगे' इस भय से सिर्फ लोगों के सामने धर्म का अनुष्ठान करता है, उसे ठीक-ठीक धार्मिक नहीं कहा जा सकता।

(४)

स्त्री यदि अपने पति के प्रति एकनिष्ठ हो तो वह सती परलोक में भी अपने पति से जा मिलती है। इसी प्रकार अपने इष्टदेवता पर एकनिष्ठ भक्ति हो तो ईश्वर-दर्शन होता है।

स्वामी विवेकानन्द-स्तवन

—श्री सारदातनय
नागपुर ।

(१)

जय जय स्वामी विवेकानन्द ।
जय वीरेश्वर भ्रमहर भास्कर, आशुतोष शिव, जय सुखकन्द ॥
त्रिभुवन-पावन, नरनारायण, विमलबोधघन, ब्रह्मपरायण ।
भवभयवारण जगदुद्धारण, नित्यमुक्त जय गतभवबन्ध ॥
युगनायक युगधर्मसहायक, चित्तप्रकाशक शुभमतिदायक ।
मोहपुंजहर मोक्ष विधायक, धीर धीर निर्भय स्वच्छंन्द ॥
निद्रितचित्त प्रबोधनकारी, मुग्धजीव-जड़ता-परिहारी ।
रामकृष्ण लीलासहचारी, नाश करो प्रभु भवदुःखद्वन्द्व ॥

(२)

जयतु विवेकानन्द योगिवर युगाचार्य यतिराज ।
जय वीरेश्वर जय शिव शंकर, जय जय जय महाराज ॥
ध्यानपरायण नर नारायण तज अखण्ड का राज ।
जीवदुःखहरण करत अवतरण, धर संन्यासी साज ॥
मोहतिमिरहर प्रखर दिवाकर उदित जगतहितकाज ।
तम नाशत, जड़ चित्त जगावत चेतत सकल समाज ॥
मूर्त विवेक-विराग-ज्ञान-बल, त्रिभुवन के सिरताज ।
सकल अविद्या भ्रान्ति हरो प्रभु, चित में करो विराज ॥

सम्पादकीय सम्बोधन

स्वामी विवेकानन्द और युवजन

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

परम करुणावतार श्रीरामकृष्ण, जगन्माता श्रीमाँ सारदा और विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी की अद्भुत् अशेष कृपा से 'विवेक शिखा' इस अंक के साथ ही अपने जीवन के चौथे वर्ष में प्रवेश कर रही है। मैं प्रसन्न हूँ। आप सब ने कई रूपों में योगदान कर इसके प्रकाशन में बल और प्रेरणा प्रदान की है। मैं कृतज्ञ हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं अपनी सीमाओं और त्रुटियों से अनजान हूँ। मैं जानता हूँ, पत्रिका निर्धारित समय पर नहीं निकल पाती, वर्ष में दो बार संयुक्तांक निकालने पड़ते हैं, कई आवश्यक स्तम्भ शुरू नहीं हो पाये हैं। ये कमियाँ हैं। किन्तु, मार्ग में अभी कई अकथनीय कठिनाइयाँ हैं। उन्हे दूर करना है। मैं कृत संकल्प हूँ। मुझे विश्वास है, इन कमियों के बावजूद, आपका स्नेह 'विवेक शिखा' को मिलता रहेगा। मैं आश्वस्त हूँ।

१९८५ का यह वर्ष 'अंतर्राष्ट्रीय युवा वर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है। यह सर्वथा उचित है। और इस युवा वर्ष का उद्घाटन १२ जनवरी, युवकों के चिर आदर्श स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस, को होने जा रहा है। यह और भी उचित है। क्यों ?

आज समग्र विश्व का युवावर्ग एक विचित्र मानसिक आवेश, उद्वेग और अपनी अस्मिता के संकट के दौर से गुजर रहा है। फलतः या तो वह एक अनिर्वचनीय उत्तेजना और आक्रोश का शिकार हो रहा या भयंकर निराशा कुंठा और संत्रास का जीवन जीने को अभिशप्त हो गया है। दोनों ही स्थितियाँ सिद्ध करती हैं कि वह दिशाहारा और पथभ्रान्त हो गया है। पहली स्थिति उसे हत्या, बलात्कार और लूट आदि की ओर अग्रसर करती है तथा दूसरी स्थिति उसे आत्महत्या, मादक द्रव्यों—गांजा, मदिरा, चरस, एल. एस. डी. आदि—के सेवन तथा भोंड़ी फैशन परस्ती, स्त्रैण्य रुचि की ओर उन्मुख करती है। दोनों ही स्थितियाँ उसे मनुष्य नहीं रहने देती, मनुष्य होने ही नहीं देती। स्वभावतः आज समाज का हर वर्ग युवजनों को कोसने लगा है। ऐसी भयावह घड़ी में प्रकाश और प्रेरणा के लिए युवजनों को स्वामी विवेकानन्द की ओर लौटना ही पड़ेगा। क्यों ?

स्वामीजी स्वयं शाश्वत यौवन के प्रतिरूप थे। वे एक पूर्ण और ऊर्जस्वित युवा थे। वे युवकों के आत्मीय, प्रिय और आदर्श थे। उन्हें स्वयं युवकों से अशेष अनुराग और अपेक्षाएँ थीं। बड़े भाव विह्वल होकर उन्होंने कहा था—"मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्त्ताओं का संग्रह करूँगा। वे सिंहविक्रम से देश की यथार्थ उन्नत्ति सम्बन्धी सारी समस्या का समाधान करेंगे।"

स्वामीजी चाहते थे युवक आत्मविश्वासी बनें, स्त्रियोचित आचरण का त्याग कर, अनन्त शक्ति, असीम उत्साह और अनन्त साहस से उद्दीप्त होकर, लोक-मंगल के लिए, समाज के संवर्द्धन के लिए अपने को उत्सर्ग कर दें। उन्होंने बड़े ही दृप्त स्वर में युवकों को आह्वान करते हुए कहा—"मेरे साहसी युवको, यह विश्वास रखो कि तुम्हीं सब कुछ हो—महान कार्य करने के लिए इस धरती पर आये हो। गीदड़-घुड़कियों से भयभीत न हो जाना—नहीं, चाहे वज्र भी गिरे, तो भी नीडर हो खड़े हो जाना और

कार्य में लग जाना।.....तुम क्यों रोते हो, बन्धु? तुम्हीं में तो सारी शक्ति निहित है। ऐ महान्, अपनी सर्वशक्तिमान प्रकृति को उद्बुद्ध करो; देखोगे, यह सारी दुनिया तुम्हारे पैरों पर लोटने लगेगी।...आज देश को आवश्यकता है साहस और वैज्ञानिक प्रतिभा की। हम चाहते हैं प्रबल साहस, प्रचण्ड शक्ति और अदम्य उत्साह। स्त्रियोचित व्यवहार से काम नहीं बनने का। भाग्य लक्ष्मी उसी के पास आती है जो पुरुषार्थी हैं, जिसके सिंह का हृदय है।.....हम चाहते हैं अनन्त शक्ति, असीम उत्साह, अनन्त साहस और अनन्त धैर्य। तभी महान कार्य सम्पन्न होगे।"

स्वामीजी की अदम्य इच्छा थी कि हमारे युवक सुदृढ़ और सबल बनें, तन से ही नहीं, मन से भी। युवक मनुष्य बनें, शुद्ध मनुष्य। युवकों की दुर्बलता देखकर स्वामीजी खिन्न हो उठते थे। क्योंकि वे जानते थे कि युवकों के भ्रष्ट आचरण का कारण उनकी दुर्बलता ही है। इसी से उन्होंने सिंह गर्जना की थी—"आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है वह है लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु—प्रचण्ड इच्छा शक्ति, जिसका अवरोध दुनिया की कोई ताकत न कर सके, जो जगत के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो.....। दुःख भोग का एक मात्र कारण है दुर्बलता। हम दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, हत्या करते हैं, तरह-तरह के अपराध करते हैं—क्यों? इस लिए कि हम दुर्बल हैं। हम दुःख भोगते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम मर जाते हैं क्योंकि हम दुर्बल हैं। जहाँ हमें दुर्बल कर देने वाली कोई चीज नहीं, वहाँ न मृत्यु है न दुःख।"

पुनः सांत्वना प्रदान करते हुए स्वामीजी युवकों से मनुष्य बनने का आग्रह करते हैं—"हम काफी रो चुके; अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े होओ और 'मनुष्य बनो'। हम 'मनुष्य' बनाने वाला धर्म ही चाहते हैं। हम 'मनुष्य' बनाने वाले सिद्धान्त ही चाहते हैं।"

'मनुष्य' से क्या तात्पर्य है स्वामीजी का? सद्गुणों के विकास से ही मनुष्य 'मनुष्य' बनता है अन्यथा वह मनुष्य का आकार मात्र रहता है। साहस, नैतिकता, पवित्रता, निःस्वार्थता और प्रेम—ये ही चीजें मनुष्य को मनुष्य बनाती हैं।

स्वामीजी युवकों का उद्बोधन करते हुए कहते हैं—'नीतिपरायण तथा साहसी बनो, अंतःकरण पूर्णतया शुद्ध रहना चाहिए। पूर्ण नीतिपरायण तथा साहसी बनो—प्राणों के लिए भी कभी न डरो। धार्मिक मत-मतांतरों को लेकर व्यर्थ में माथापच्ची मत करो। कायर लोग ही पापाचरण करते हैं, वीर पुरुष कभी पापानुष्ठान नहीं करते—यहाँ तक कि कभी वे मन में भी पाप का विचार नहीं लाते।.....पवित्र और निःस्वार्थ बनने की चेष्टा करो—यही धर्म का सार है। मेरे बच्चो, धर्म का रहस्य सिद्धान्तों में नहीं, व्यवहार में है। अच्छा बनना और अच्छा करना—यही धर्म का सार तत्व है।" "बनो और बनाओ"—युवकों से यही स्वामीजी की अपील थी।

कितनी तड़प थी स्वामीजी में युवकों को एक सच्चे मनुष्य के रूप में ढालने और देखने के लिए! आखिर क्यों? इसलिए कि देश का अभ्युत्थान युवकों के मनुष्य बने बिना नहीं हो सकेगा। "मनुष्य, केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप हो जायगा। आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धा सम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। एक सौ मिल जायँ तो संसार का कायाकल्प हो जाय।..... पहले उनका जीवन निर्माण करना होगा, तब कहीं काम होगा।"

स्वामीजी अपने शिष्यों एवं संन्यासियों को ऐसे युवकों के साथ कार्य करने कहते थे जो सच्चे हृदय से भारतीय कल्याण का व्रत ले सकें तथा उसे ही जो अपना एकमात्र कर्तव्य समझें। युवकों की कार्य-दिशा का

संकेत करते हुए स्वामीजी ने कहा, "मैंने तो इन नवयुवकों का संगठन करने के लिए जन्म लिया है..... मैं चाहता हूँ कि इन्हें अप्रतिहत गतिशील तरंगों की भाँति भारत में सब ओर भेजूँ, जो दीन-हीनों एवं पददलितों के द्वार पर सुख-नैतिकता, धर्म एवं शिक्षा उड़ेल दें और इसे मैं करूँगा, या मरूँगा।"

स्वामीजी ने तीन बातों को महान् बनने के लिए आवश्यक माना—(१) सदाचार की शक्ति में विश्वास, (२) ईर्ष्या और संदेह का परित्याग तथा (३) जो सत्कर्म करने के लिए यत्नवान हों या कर रहे हों, उनकी सहायता करना। युवकों को इन्हें ग्रहण करना ही होगा। हर स्त्री, हर पुरुष और सभी को ईश्वर के समान समझना होगा। जीव की शिव-भाव से पूजा करनी होगी। अपने हृदय का विस्तार करना होगा। "अपने तन, मन और वाणी को 'जगत्हिताय' अर्पित करो। तुमने पढ़ा है, 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'—"अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो" परन्तु मैं कहता हूँ दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव—गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दु:खी इन्हें अपना ईश्वर मानो। इनकी सेवा करना ही धर्म समझो।"

भारत के विकास को कोई रोक नहीं सकता। किन्तु "भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदय वाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरंतर नीचे डूबते जा रहे हैं।"

तो क्या आप नवयुवकगण स्वामीजी की वाणी नहीं सुनेंगे? उनके सिंहनाद से नहीं जगेंगे?—"उठो, जागो, स्वयं जगकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। उठो, जागो और तब तक रुको नहीं जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।"

स्वामीजी से मेरी प्रार्थना है कि वे आज के नवयुवकों में अपनी ओजमयी वाणी के प्रभाव से विद्युत संचार कर उनके जीवन को अपने आदर्शों के अनुरूप गढ़ने में रुचि उत्पन्न करें ताकि वे स्वयं अपने को सही मनुष्य बनाकर राष्ट्र-जीवन का मंगल और विकास कर सकें। जय स्वामीजी!

निवेदन

विवेक शिखा के ग्राहकों से निवेदन है कि सन् १९८५ ई० के लिए विवेक शिखा का वार्षिक शुल्क २० रुपये यथाशीघ्र मनीआर्डर द्वारा भेज कर हमें अनुगृहीत करें।

आप का सहयोग ही हमारा सम्बल है, आपके सहयोग की हमें अपेक्षा है।

—संपादक

विवेक शिखा, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा – ८४१३०१ (बिहार)

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

[स्वामी अद्भुतानन्द जिन्हें लाटू महाराज भी कहा जाता है। श्रीरामकृष्ण परमहंस के एक मात्र बिहारी (छपरा जिला निवासी) शिष्य थे। निरक्षर रहने पर भी उन्होंने उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त की थी। प्रस्तुत निबन्ध उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'सत्-कथा' नामक पुस्तक से साभार संकलित एवं अनूदित किया गया है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के ब्रह्मचारी शंभुचैतन्यजी महाराज।—सं०]

एक मात्र वासना है—प्रत्येक जन्म में विवेकानन्द भाई के समान गुरुभाई मिले। पहले मैं समझ नहीं पाया था, मेरे लिए उसने इतना किया है। कितनी ही बार मैंने उसे गाली दी थी, किन्तु उसने कुछ भी बुरा न माना। अब यह सब याद आने पर दुःख होता है—किसको कहूँ? मैं उसकी पूजा करता हूँ, इसमें क्या आश्चर्य! उनके (श्रीरामकृष्णदेव के) नीचे ही विवेकानन्द भाई का प्रेम था।

आजकल तो बहुत नाम हो गया है, विवेकानन्द भाई का। आज यदि वह रहता तो कितना मजा आता? मैंने कहा था—"मठ-वठ करके क्या होगा?" विवेकानन्द भाई ने कहा था—"मठ मेरे-तुम्हारे लिए नहीं है, इन सब लड़कों के लिए हैं। यदि वे पवित्रता से जीवन बिता सकें तो भी अच्छा है। मठ में उनकी कृपा से दाल-भात की कमी न होगी। अब देख पाता हूँ, उसने जो कुछ कहा था, सब ठीक है।"

बेलुड़ मठ में एकबार हुकुम हुआ, सबेरे चार बजे उठकर सबको ध्यान करना होगा। घन्टा बजाकर सब की नींद भंग की जाती थी। मैं एक दिन सुबह उठकर बिस्तरा बाँधकर जा रहा हूँ, देखकर विवेकानन्द भाई ने पूछा—"कहाँ जा रहे हो?" मैंने कहा—"तुम विलायत से लौटे हो, कितने नये-नये कानून बनाओगे, मैं ये सब नहीं मान सकूँगा। मन क्या घड़ी के समान है जो घन्टा बजने पर ध्यान में बैठ जाएगा? मेरी अभी ऐसी अवस्था नहीं हुई, यदि तुम्हारी हो गयी हो तो अच्छा ही है। उनकी कृपा से दो मुट्ठी अनाज मिल ही जाएगा।" तब वह मेरे मन का भाव समझकर बोला—"तुझे जाना नहीं होगा। तुमलोगों के लिए ये सब नियम नहीं हैं। ये सब नये लोग हैं, इनका भाव स्थायी करने के लिए ये सब नियम हैं। तब मैंने चैन की साँस लेकर कहा—"ऐसा कहो"।

जप-ध्यान करने के बाद ही इसको-उसको मारना, गाली देना, ये सब क्या है? विवेकानन्द भाई ने ठाकुर के किसी पार्षद को कहा था—"तेरा ध्यान न करना ही अच्छा था।" उसका क्रोध काफी था, किन्तु गुरुभाइयों के प्रति उसका प्रगाढ़ प्रेम था। यदि वह सुन लेता कि हमलोगों में से किसी को बाहर का कोई आदमी कुछ बोला है तो उसकी खैर नहीं थी।

विवेकानन्द भाई एक बार रामबाबू (श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य श्री रामचन्द्र दत्त) से मिलने के लिए गया था। रामबाबू उस समय बीमार थे। कई लोगों के सामने उसने रामबाबू के जूते उठाकर दिये। रामबाबू ने कहा—"बिले, यह क्या करता है, यह क्या करता है?" उसने उत्तर में कहा—"रामदादा, मैं तो तुम्हारा वही बिले हूँ। तुमने मुझपर जो उपकार किया है, वह क्या भूल गया हूँ?"

भौतिक स्तर पर ये दो शक्तियाँ अणु-परमाणु में कार्यरत केन्द्राभिमुखी तथा केन्द्रापसारी (Centripetal and centrifugal) शक्तियों के रूप में दिखाई देती है। ब्रह्माण्ड में भी यही दिखाई देता है। ग्रह नक्षत्र केन्द्रापसारी शक्ति के द्वारा दूर भागना चाहते हैं, लेकिन किसी बड़े तारा के केन्द्राभिमुखी आकर्षण से वे उसी के चारों ओर घूमने लगते हैं। प्राणिशास्त्र (Biology) तथा क्रमविकास (Evolution) के क्षेत्र में एक शक्ति नयी-नयी जातियों को जन्म देती है, तो दूसरी शक्ति योग्यतम की उत्तर-जीविता (Survival of the fittest) के सिद्धान्त के अनुसार एक जाति को जीवित रख अन्य को नष्ट करने में तत्पर है।

मानव-जाति के इतिहास का अध्ययन करने पर भी हम यही बात पाते हैं। सिकन्दर, तैमूरलंग, चंगेज खाँ जैसा एक शक्तिशाली योद्धा तलवार के बल पर विश्व के विभिन्न देशों को जीतकर एक छत्र, एक शासन के अधीन लाने का प्रयत्न करता है। लेकिन उसके उत्कर्ष के चरम शिखर पर पहुँचते न पहुँचते, सर्व-विजयी होते न होते, उसी का साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बँट जाता है। या, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद को केन्द्र कर एक विशाल भावतरंग उठती दिखाई देती है, जो पशुबल अथवा प्रेम से समग्र विश्व पर छा जाने का, विश्व को एक धर्म-पताका के नीचे लाने का प्रयत्न करती है। लेकिन उसके आगे बढ़ते-न-बढ़ते वह स्वयं परस्पर विरोधी एवं संघर्षरत संप्रदायों में विभक्त हो जाती है।

दर्शन एवं तत्वज्ञान के स्तर पर भी यह भद दिखाई देता है। बौद्ध मत कहता है विविधता ही जीवन का सार है, इसी से हमें सन्तोष कर लेना चाहिए। इस दृश्य प्रपंच के मध्य एकता स्थापित करनेवाली कोई वस्तु नहीं है। इसके विपरीत वेदान्ती कहता है कि केवल एकत्व ही ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व है, विविधता तो केवल दृश्य-प्रपंच, क्षणभंगुर प्रतीति मात्र है। दो शक्तियों का संघर्ष सामाजिक स्तर पर भी दिखाई देता है, और यही, आज के विषय से सम्बन्धित है। जिस काल से समाज आरम्भ हुआ, ये दोनों शक्तियाँ कार्य कर रही हैं तथा विभिन्न स्थानों और कालों में उनका कार्य नाना रूपों में प्रकट हुआ है। एक जाति बनाने में, दूसरी तोड़ने में लगी है। एक श्रेणियों एवं विशेषाधिकारों को जन्म देने और दूसरी उनका विनाश करने में लगी है। एक विचारधारा कहती है कि व्यक्ति ही समाज की इकाई है, व्यक्ति के विकास पर ही समाज का विकास निर्भर है, अतः व्यक्ति को पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिए। दूसरा मत कहता है कि समाज के स्वास्थ्य पर ही व्यक्ति का स्वास्थ्य निर्भर है। अतः समाज को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अगर व्यक्ति समाज से पृथक हो जाय तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता। एक वर्ग कहता है कि सामाजिक वर्गीकरण में पूर्ण साम्य से समाज की मृत्यु हो जायेगी। जीवन का हम जो अर्थ लगाते हैं उसका निमित्त नानात्व ही है। अगर व्यक्तिगत मौलिकता न रहे तो समाज एक दृश्यहीन मरुभूमि की तरह हो जायेगा। दूसरी ओर एकत्व के भाव के समर्थक भी सभी काल में रहे हैं। उपनिषदों, बुद्धों एवं ईसामसीहों की वाणी में, तथा आधुनिक युग के कुछ सामाजिक एवं राजनैतिक आन्दोलनों में भी हमें इसी समाजगत साम्य की वाणी दिखाई देती हैं।

नीति शास्त्र का समाधान --

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार में सभी स्तरों पर दो शक्तियाँ निरन्तर कार्य करती रहती हैं। ऐसी स्थिति में एकत्व अथवा अद्वैत वेदान्त प्रतिपादित एकात्मकता की अभिव्यक्ति मानव समाज में कैसे सम्भव है?

इस समस्या का उत्तर हमें वेदान्त के नीतिशास्त्र में मिलता है। इसे हम 'व्यावहारिक जीवन में वेदान्त' की संज्ञा भी दे सकते हैं। नीतिशास्त्र का उद्देश्य ही प्रेम के माध्यम से एकत्व स्थापित करना है। वह विभेद की ओर भ्रूक्षेप नहीं करता। भेद रहें। इससे

कोई कठिनाई नहीं है। वेदान्त कहता है कि ये दो शक्तियाँ विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर परिपूरक है। नानात्व में एकत्व एवं एकत्व में नानात्व तो प्रकृति का विधान है, सृष्टि की बनावट है। एकत्व सर्वत्र विद्यमान है, और उसी प्रकार नानात्व भी। एकत्व को नये सिरे से बनाना नहीं है। उसे स्वीकार भर करना है। समस्त विश्व भेद-अभेद की क्रीड़ाभूमि है, असीम में ससीम की लीला है।

अतः परिस्थितियों एवं बाह्य-जगत् के भेद मिटाकर पूर्ण एकरूपता लाना नीतिशास्त्र का उद्देश्य नहीं है। और यह सम्भव भी नहीं है। मानव-मानव में भिन्नता रहेगी ही। लेकिन हम इन सभी के भीतर विद्यमान समता देख सकते हैं।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

सर्वत्र ईश्वर को समभाव से अवस्थित देखकर व्यक्ति किसी का हनन नहीं करता। वही श्रेष्ठ है जो ब्राह्मण, श्वपच, चाण्डाल, गाय तथा हाथी सभी के प्रति समदर्शी है। इस वेदान्त-दर्शन का व्यावहारिक, सामाजिक जीवन में परिणाम होगा विशेषाधिकारों का त्याग।

विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकार—

विशेषाधिकार मानव समाज के विष हैं। और ये कई प्रकार के होते हैं। सर्वप्रथम है बलवान का निर्बल पर पाशविक अधिकार। दूसरा है धन का विशेषाधिकार। धनी व्यक्ति धनहीन से अधिक सुविधाएँ चाहता है, उसपर प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। इसके बाद है बुद्धि का विशेषाधिकार। और सबसे अन्तिम तथा सबसे निकृष्ट, क्योंकि यह सर्वाधिक अत्याचार-पूर्ण है, आध्यात्मिकता का, धर्म का विशेषाधिकार। और आज के युग में कुछ नये विशेषाधिकारों ने जन्म लिया है—वे हैं पद या राजनैतिक पार्टी पर आधारित विशेषाधिकार। लेकिन मानसिक, शारीरिक अथवा आध्यात्मिक विशेषाधिकार स्वीकार करना और साथ ही वेदान्त के एकात्मवाद को, समत्व को भी स्वीकार करना, ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

संसार में सभी ओर विशेषाधिकारों का ही झगड़ा है, तथा जितने सामाजिक वा राजनैतिक आन्दोलन हुए है वे सभी विशेषाधिकारों का नाश कर समानता स्थापित करना चाहते हैं, तब फिर वेदान्त के एकात्मवाद की विशेषता क्या है? इस्लाम, ईसाई धर्म तथा साम्यवाद जैसे अन्य एकता व समता-प्रतिपादक आन्दोलनों तथा स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित वेदान्त पर आधारित एकात्मतावाद में पहला अन्त यह है कि जहाँ दूसरे आन्दोलन विविधता का किसी-न-किसी स्तर पर—चाहे वह सामाजिक हो अथवा धार्मिक—नाश करना चाहते हैं, स्वामी जी सभी विभेदों को बनाये रखना चाहते हैं। धार्मिक आन्दोलनों में एकता का आधार एक धर्म पुस्तक या पैगम्बर होता है, तथा उसमें अन्य धर्मों, आदि को स्थान नहीं होता। बाह्य विभेद को नष्ट करने का प्रयास ही कटुता, अशान्ति एवं संघर्ष का कारण होता है। स्वामीजी का कथन है, "विविधता को अनन्त काल तक रहने दो, यह जीवन का सार है। तुम धनी हो, मैं निर्धन हूँ, तुम सबल हो, मैं दुर्बल; तुम बुद्धिमान हो, मैं अज्ञानी; तुम बहुत आध्यात्मिक हो, मैं कम; (तुम ईसाई हो, मैं हिन्दू) इससे क्या? पर चूँकि तुममें अधिक बुद्धिबल या आध्यात्मिक बल है, इसलिए तुम्हें अधिक सहूलियतें, विशेषाधिकार कदापि नहीं मिलने चाहिए।"

स्वामी विवेकानन्द की एकात्मता की स्थापना की प्रणाली एवं अन्यान्य समतावादी आन्दोलनों में दूसरा अन्तर यह है कि जहाँ दूसरे आन्दोलन विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग से विशेषाधिकार छीनना चाहते हैं, वहाँ स्वामीजी विशेषाधिकार देने का उपदेश देते हैं। विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए लड़ना समस्या का समाधान नहीं हैं, क्योंकि जिसे भी यह

प्राप्त होगा, वही उसे रखना तथा दूसरे को उससे वंचित करना चाहेगा। स्वयं को प्राप्त सहूलियतों का त्याग करना ही इसका समाधान है। सभी प्रचलित आन्दोलन अधिकारों के लिए हैं। स्वामीजी कर्त्तव्य का आन्दोलन शुरू करना चाहते थे।

एकात्म मानवता का भविष्य—

प्रश्न हो सकता है कि वेदान्त के सर्वात्मकता के सिद्धान्त पर आधारित मानवता का भविष्य क्या है? क्या यह कभी व्यावहारिक जगत् में संभव है?

जो लोग अपने विशेषाधिकारों को त्याग कर, गरीब, अमीर, ज्ञानी, अज्ञानी, पापी, पुण्यात्मा, सभी में अपनी आत्मा की अवस्थिति को स्वीकार कर सर्वत्र उसी को देखने का प्रयास करने के लिए तैयार हैं, उनके लिए विश्व-एकात्मता का आदर्श, अभी इसी क्षण विद्यमान है। वे हरिजन-बस्ती में जायें या धनिकों की किसी अति-आधुनिक कालोनी में, किसानों और मजदूरों के बीच रहें या उद्योगपतियों और सत्ताधारियों के बीच, वे अपने को अपने भाइयों के बीच ही पायेंगे। वे भारत में रहें या विदेशों में, हिन्दुओं के साथ हों या ईसाई या मुसलमानों के साथ, उन्हें कोई पराया नहीं लगेगा, सभी उनके अपने ही होंगे। सर्वात्मकता के सिद्धान्त को बौद्धिक रूप से भी स्वीकार करनेवालों के लिए यह पृथिवी इसी क्षण स्वर्ग तुल्य है।

लेकिन जो लोग भेद में अभेद के, अनेकता में एकता के सत्य को अस्वीकार कर केवल अपने ही मन विशेष को कट्टरता से पकड़े रहना चाहते हैं, जो धनी, निर्धन, बुद्धिमान, अज्ञानी, चाहे किसी भी वर्ग के क्यों न हों, विशेषाधिकारों की माँग कर उनके लिए झगड़ते रहेंगे, उन्हें समय लगेगा। घात-प्रतिघात एवं अनेक चोटें खाने के बाद वे इस सत्य को हृदयंगम कर सकेंगे कि अधिकारों को प्राप्त करना समस्या का समाधान नहीं है। देने में ही हम पाते हैं। हमारा कार्य प्रेम करना, सेवा करना, देना है। इसी में हमारा पाना निहित है

अतः वर्तमान युग में सर्वत्र संघर्ष एवं अशान्ति के लक्षण दिखाई देते हुए भी भय या निराशा का कोई कारण नहीं है। बीज से नये अंकुर के पैदा होने के लिए बीज को सड़ना पड़ता है, उसे नष्ट होना होता है। इसी प्रकार नये प्रकार की समाज-व्यवस्था, नयी मानव चेतना के उदय के लिए पुरानी मान्यताओं एवं उन पर आधारित समाज-व्यवस्था को नष्ट होना होगा। श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव नये सिद्धातों पर आधारित एक नये समाज के निर्माण के लिए हुआ था। उनके द्वारा जिस नयी मानवता का बीज बोया गया है, तथा जो धीरे-धीरे अंकुरित हो रहा है, उसका सिंचन कर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत करने का महत् कार्य स्वामी विवेकानन्द के विचारों में आस्था रखने वाले व्यक्तियों को करना होगा। यह कार्य करना होगा स्वयं के चरित्र-निर्माण द्वारा तथा छोटी-छोटी आदर्श मानव इकाइयों के निर्माण द्वारा, न कि भाषणों, सभाओं अथवा राजनीति द्वारा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "एक नवीन भारत निकल पड़े हल पकड़ कर, किसानों की कुटी भेद कर, मछुआ, मोची, मेहतरों की झोंपड़ियों से, निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से, निकले झाड़ियों, जंगलों, पर्वतों पहाड़ों से।" निकले केवल भारत ही नहीं, नया विश्व, नयी मानवता। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि स्वामीजी ने यह नहीं कहा है कि नया भारत सभाओं, संसदों या राजनैतिक दलों से निकले। इनका योगदान भले ही हो, लेकिन नयी मानवता का निर्माण छोटी इकाइयों से ही संभव है।

नये समाज-निर्माण की कार्य प्रणाली—

स्वामी विवेकानन्द केवल एक सिद्धान्त-प्रतिपादक स्वप्नद्रष्टा मात्र नहीं थे। वे अत्यन्त व्यवहार कुशल यथार्थ [illegible] भी थे। उन्होंने एकात्म-मानवता का सिद्धान्त प्रतिपादित ही नहीं किया बल्कि उसे कार्यरूप में परिणत करने की योजना भी बतायी है, एवं स्वयं प्रत्यक्ष करके उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। स्वामीजीकी

योजना का प्रमुख अंग था सर्व त्यागी संन्यासियों के एक संघ की स्थापना, जो सर्वत्र अपनी ही आत्मा को देखने का, वेदान्त के सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन में उतारने का, प्रयत्न करें। जिस ब्रह्मतत्व का आँखें बन्द करके ध्यान करें, उसी को आँखें खोलकर गरीबों, रोगियों, पीड़ितों, पापी, पुण्ययात्मा, चाण्डाल और ब्राह्मण सभी में देखें तथा नारायण भाव से इन सभी की सेवा करने का प्रयत्न करें, जो किसानों के खेतों में, कारीगर के कारखाने में, बनिये की दूकान में जायें और अपनी वाणी एवं व्यवहार द्वारा उनमें प्रसुप्त चैतन्य को जगाने का प्रयत्न करें।

यह कार्य भारत में बिखरे हुए सैकड़ों मठों से केवल संन्यासियों द्वारा ही किया जाना है, यह बात नहीं है। यह कार्य इस सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले छोटे-बड़े गृही-सन्यासी, सभी द्वारा छोटी-छोटी मानव-ईकाइयों का निर्माण करके करना होगा।

माँ सारदा का दृष्टान्त —

एकात्म-मानवता के सिद्धान्त पर आधारित समाज का निर्माण किस प्रकार किया जाना चाहिए इसका उत्कृष्ट उदाहरण माँ सारदा ने प्रस्तुत किया है। वे एक निरक्षर ग्रामीण, महिला थीं, जो एक बड़े परिवार की सदस्या थीं। उन्होंने पापी, पुण्यात्मा, बुद्धिमान, अज्ञानी, किसान, मजदूर से लेकर डाक्टर एवं वकील तक सबको अपनी सन्तान के रूप में स्वीकार किया था। एक मुसलमान अमजद जो चोरी-डकैती किया करता था, तथा श्रीरामकृष्ण के संन्यासी शिष्य, महान् सन्त स्वामी सारदानन्दजी, दोनों के प्रति उनमें समान प्रेम था। भारत के स्वाधीनता संग्राम के सेनानी, बंगाल के क्रान्तिकारी युवक जिस प्रकार उनकी सन्तानें थीं, उसी प्रकार भारत पर शासन करने वाले गोरे अंग्रेज भी। "कोई पराया नहीं है। सभी अपने हैं। सभी को अपना बनाना सीखो।" यह माँ सारदा की एक प्रसिद्ध उक्ति है, जिसे उन्होंने स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ किया था।

क्या सचमुच कोई पराया नहीं है? अपने जीवन के अनुभव तो हमें यही दिखाते हैं कि संसार में हमारा अपना कोई नहीं है, सभी पराये हैं। काम के समय, आवश्यकता और विपत्ति के समय कोई सहायता नहीं करता, अपने भी पराये बन जाते हैं। दूसरों से सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा से तो हम सचमुच संसार में बिरले ही किसी को अपना पायेंगे। लेकिन अपने-पराये के विषय को बिलकुल भिन्न प्रकार से भी देखा जा सकता है। जब हमारे माता-पिता भाई-बहन या सगे सम्बन्धी विपदा-ग्रस्त होते हैं, तब हम उनकी सहायता के लिये दौड़ पड़ते हैं, क्योंकि हम उन्हें 'अपना' समझते हैं। तात्पर्य यह कि देने की अपेक्षा से संसार में सभी को हमें अपना बनाना है। माँ सारदा यही चाहती थी कि हम स्नेह, सेवा एवं सहायता द्वारा सभी को अपना बनावें अपने परिवार का दायरा बढ़ाकर सारे विश्व को अपना बना लें।

स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं, "संसार में सदा दाता का स्थान ग्रहण करो। प्रेम दो, सहायता दो, सेवा दो, जो कुछ थोड़ा-बहुत तुम दे सकते हो दो, लेकिन सौदेबाजी से दूर रहो। कोई शर्त्त न रखो और कोई शर्त्त तुम पर थोपी नहीं जायेगी। जिस प्रकार प्रभु अपने प्राचुर्य से देते हैं, उसी प्रकार हम भी अपनी पूर्णता से दें।"

यही है एकात्म मानवता का आधार एवं उपाय।

स्वामी विवेकानन्द और ग्रामोन्नयन

स्वामी शशांकानन्द
बेलुड़ मठ

युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण देव ने "शिवज्ञान से जीव सेवा" का पाठ अपने परम शिष्य युगनायक स्वामी विवेकानन्द को सिखाया था। एक ओर स्वामीजी ने कठोर साधना द्वारा निर्विकल्प समाधि में अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूपब्रह्म की अनुभूति की थी तो दूसरी ओर बाह्य जगत में सर्वत्र उसी ब्रह्मसत्ता को ओत-प्रोत देखकर मानव-प्रेम द्वारा प्रभु के विराट स्वरूप की पूजा की थी। वेद प्रतिपादित सर्वोच्च सत्य "सर्व खल्विदं ब्रह्म" को मठ, वन, पर्वत और कन्दराओं तक सीमित न रखकर स्वामीजी ने जन-साधारण तक पहुँचा दिया। भूले भटके साधकों को उन्होंने मानव-सेवा द्वारा माधव-सेवा का रास्ता दिखा दिया। उन्होंने कहा :—

बहुरूप में तव सन्मुख तज कहाँ खोजते हो ईश्वर।
सब जीवों में जो करे प्रेम उसकी सेवा लेते ईश्वर॥

इस भाव का अभाव ही आज तक समस्त ग्रामोन्नयन योजनाओं की असफलता का मुख्य कारण रहा है। ग्राम के अर्थ मकान, दुकान, खेत और बगीचे नहीं, ग्राम का अर्थ हैं ग्रामवासी "मानव", ग्रामोन्नयन का अर्थ हैं ग्रामवासी की उन्नति। यदि हम मानव को पिछड़ी जाति, मोची, मेहतर किसान मजदूर समझकर सेवा करने जाएँ तो असफलता ही हाथ लगेगी, क्योंकि हम उन्हें हेय समझकर अपने को सुधारक कहलाकर नाम-यश इत्यादि स्वार्थकार्यों को ही ध्येय समझ लेते हैं। परन्तु वास्तव में ही ग्रामोन्नयन करना चाहें तो ग्रामवासियों के प्रति निःस्वार्थ विशुद्ध प्रेम अनिवार्य है। मानव में माधव की भावना अनिवार्य है।

स्वामीजी ने कहा था—

"क्या तुम अपने भाई—मनुष्य जाति को प्यार करते हो? ईश्वर को कहाँ ढूँढ़ने चले हो? ये सब गरीब, दुखी, दुर्बल मनुष्य क्या ईश्वर नहीं है? इन्हीं की पूजा पहले क्यों नहीं करते? गंगातट पर फिर कुँआ खोदने क्यों जाते हो?" (वि० सा० खण्ड ३ पृ०३२३)

सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर जब परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द कन्याकुमारी पहुँचे तो भारत का प्राचीन गौरवमय इतिहास तथा वर्त्तमान दुर्दशा उनकी आँखों के सामने चल-चित्र की भाँति घूम गयी। सुख-शान्तिपूर्ण एवं धन-धान्य सम्पन्न भारतवासी ऋषियों की भाग्यशाली सन्तान आज केवल दुखी, दरिद्र, दीन-हीन, दुर्बल अस्थिपिंजर मात्र रह गयी थी। इस दुर्दशा का कारण था हमारी जाति द्वारा मानव की अवहेलना, जनसाधारण की उपेक्षा। स्वामीजी ने अन्यत्र कहा था, 'मैं समझता हूँ कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जनसमुदाय की उपेक्षा है और वह हमारे पतन का एक कारण है।" (वि० सा० खण्ड ४ पृ० २६०) "हमारे अभिजात पूर्वज जन-साधारण जन-समुदाय को जमाने से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गए। यहाँ तक कि वे अपने को मनुष्य मानना भी भूल गये। (वि० सा० खण्ड ५ पृ० ८८)" यथार्थ राष्ट्र जो झोंपड़ियों में निवास करता है, अपना पौरुष विस्मृत कर बैठा है अपना व्यक्तित्व खो चुका है।" (वि० सा० खण्ड २ पृ० ३६५)

इसीलिए कन्याकुमारी की उस नीरव एवं निर्जन

चट्टान पर बैठे-बैठे स्वामी को एक उपाय सूझा था "सर्वसाधरण में ईश्वर की पूजा" और उनके श्रीमुख से निकल पड़ा, दरिद्र देवो भव। मूर्ख देवो भव। रोगी देवो भव। हजारों वर्षों के राजनैतिक एवं सामाजिक अत्याचारों से दबे हुए तथा अवहेलित जन-समुदाय "मानव" को स्वामीजी ने पुनः आराध्य देवता के स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। स्वामीजी ने मुमुक्षु साधकों का इस साधना-पथ पर आह्वान करते हुए कहा था,

"आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" गाँव-गाँव तथा घर-घर जाकर लोकहित एवं ऐसे कार्यों में आत्म नियोग करो जिससे जगत का कल्याण हो सके। (वि० सा० खण्ड ३ पृ० ३००) बीस करोड़ नर-नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता के दल-दल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? उनके उद्धार का क्या उपाय है? ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेंगे।" (वि० सा० खंड ३ पृ० ३४५)

ग्रामोन्नयन का प्रथम सोपान : जड़भाव दूर करो :

झोपड़ियों में रहनेवाले जनसमुदाय की उन्नति कैसे हो? इस प्रश्न पर सबसे पहले हमें विचार करना होगा। अवहेलित ग्रामवासी अपना व्यक्तित्व खो चुके हैं, अपनी क्षमता, शक्ति और स्वरूप के बारे में न जानने के कारण ही दुर्बल और आलसी हो गए हैं—जड़ भावापन्न हो चुके हैं। इन जड़ भावापन्न ग्रामवासियों का जड़भाव पहले दूर करना ही ग्रामोन्नयन का कार्यों का प्रथम सोपान होना चाहिए। स्वामीजी ने कहा था, "राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं? क्योंकि वह जड़भावापन्न है।" (वि० सा० खण्ड ५ पृ० १११)····· "हमारी जाति के ऊपर घोर आलस्य, दुर्बलता और श्यामोह छाया हुआ है।" (वि०सा०खं०५ पृ० ८१)····· "इसीलिए मैं रजोगुण की वृद्धि कर कर्मतत्परता के द्वारा इस देश के लोगों को पहले इहलौकिक जीवन संग्राम के लिए समर्थ बनाना चाहता हूँ। देह में शक्ति नहीं, हृदय में उत्साह नहीं, मस्तिष्क में प्रतिभा नहीं। क्या होगा रे इन जड़ पिण्डों से? मैं हिलाडुलाकर इनमें स्पन्दन लाना चाहता हूँ इसलिए मैंने प्राणान्तप्रण किया है, वेदान्त के अमोघ मंत्र के बल से इन्हें जगाऊँगा। "उत्तिष्ठत। जाग्रत।" इस अभयवाणी को सुनाने के लिए मेरा जन्म हुआ है।" (वि० सा० खंड ६ पृ० १५५)

उत्तिष्ठत। जाग्रत।

वेदान्त केसरी स्वामीजी "उत्तिष्ठत। जाग्रत।" की गर्जना करते-करते चले गए किन्तु उनकी गर्जन आज भी गूँज रही है। विवेकानन्द के शिष्य कहाने वालों के लिए स्वामीजी का आदेश आज भी उतना ही ताजा है जितना कि ८० वर्ष पहले था। "इस समय तुम्हारे लिए यह कर्त्तव्य है कि तुम देश के कोने-कोने में, गाँव-गाँव में जाकर लोगों को समझाओ कि केवल खाली बैठने से काम नहीं चलेगा। उन्हें उनकी वास्तविक परिस्थिति से परिचित करा दो और कहो हे भाइयों तुम सब उठो। जागो। और कितनी देर तक सोते रहोगे।" जाओ और उन्हें उपदेश करो कि वे अपनी अवस्था को किस प्रकार उन्नत करें।

ग्रामोन्नयन का भार संन्यासियों पर :

युगों-युगों से संन्यासीवर्ग दर्शनशास्त्र की शिक्षा देता रहा है। किन्तु भूखे नंगे जनसाधरण को इस शिक्षा से क्या लाभ? खाने को अन्न नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं और चिन्ता में नींद नहीं और उधर धर्मोपदेश की भरमार। स्वामीजी ने ग्रामोन्नयन कार्य का भार संन्यासियों पर ही देना चाहा ताकि वे धर्मोपदेश के साथ-साथ जनसमुदाय में जागृति ला सकें उनकी जड़भावापन्नावस्था को दूर कर सकें। स्वामीजी ने कहा था, "भाई, यह सब देखकर खासकर देश का दारिद्य और अज्ञता देखकर मुझे नींद नहीं आती। मैंने एक योजना सोची तथा उसके कार्यान्वित करने का दृढ़ संकल्प किया। कन्याकुमारी में माता कुमारी के मन्दिर में बैठकर, भारत की अन्तिम चट्टान पर बैठकर मैंने सोचा कि हम जो इतने संन्यासी घूमते-फिरते हैं

और लोगों को दर्शनशास्त्र की शिक्षा दे रहे हैं, यह सब निरा पागलपन है। हमारे गुरुदेव नहीं कहा करते थे कि खाली पेट से धर्म नहीं होता? सोचो गाँव-गाँव में कितने ही संन्यासी घूमते फिरते हैं वे क्या काम करते है? यदि कोई निःस्वार्थ परोपकारी संन्यासी गाँव-गाँव विद्यादान करता फिरे और भाँति-भाँति के उपाय से मानचित्र, कैमरा, भूगोल आदि के सहारे चाण्डाल तक, सबकी उन्नति के लिए घूमे (वि० सा० खण्ड २ पृ० ३३८)" ·····प्रत्येक गाँव में गरीबों और कंगालों के दरवाजे-दरवाजे घूमो।···गरीब और नीच जातियों के घर-घर जाओ और उन्हें धर्म का उपदेश करो। उन्हें भूगोल तथा अन्य इसी प्रकार के विषयों की मौखिक शिक्षा भी दो।·····बीच-बीच में दूसरे गाँवों में भी जाकर धर्मोपदेश करो तथा जीवन-यापन की शिक्षा दो। (वि० सा० खण्ड ३ पृ० ३७७)

संन्यासियों को ग्रामोन्नयन कार्य का प्रशिक्षण :

प्रत्येक कार्य के सम्पादन के लिए उस कार्य के बारे में जानकारी की आवश्यकता होती है। इतना ही नहीं, कार्य सम्पादन में दक्षता लाने के लिए अनुभवी लोगों द्वारा प्रशिक्षण भी आवश्यक है। अतः स्वामीजी के विचार में सबसे पहले संन्यासियों का प्रशिक्षण करना होगा। "पहले हमें ऐसे केन्द्रों की जरूरत हैं, जहाँ संन्यासियों को ऐसी शिक्षा की रीतियों से अवगत कराने की व्यवस्था हो सके। उदाहरणार्थ, मैं अपने एक मनुष्य को कैमरा लेकर बाहर भेजता हूँ, पर इसके पहले उसके बारे में सिखा देना भी तो आवाश्यक है।"

(वि० सा० खण्ड १० पृ० १९)

युवक संगठन :

संसार में विरल संन्यासियों कीसंख्या अधिक नहीं होती। जो इतना त्याग नहीं कर सकते, जिनके हृदय में मानव-प्रेम है, त्याग की भावना है परन्तु पारिवारिक दायित्व के कारण संन्यासी नहीं हो सकते —अपने परिवार के लिए कुछ उपार्जन भी करना पड़ता हैं— उनकी संख्या कम नहीं होती। ऐसे युवकों का संगठन ग्रामोन्नयन के कार्यों में क्रान्ति ला सकता है। एक युवक जिसने संसार त्यागने का निश्चय कर लिया था उसके पारिवारिक दायित्व की ओर उसका मन आकर्षित कर स्वामीजी ने उसे एक पत्र में लिखा था, "स्वार्थत्याग से बढ़कर जगत में और कुछ भी नहीं है। किन्तु तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने हृदय की प्रबल आकांक्षा का दमन करना, उनके कल्याण के लिए, जो तुम्हारे ऊपर निर्भर हैं, यह भी कम बड़ा बलिदान नहीं है। श्रीरामकृष्ण के उपदेश तथा उनके निष्कलंक जीवन का अनुसरण करो और उसके बाद अपने परिवार के सुख की ओर ध्यान दो।·····जो सच्चे हृदय से भारतीय कल्याण का व्रत ले सकें और इसे ही जो एकमात्र कर्त्तव्य समझें ऐसे युवकों के साथ कार्य करते रहो। उन्हें जाग्रत करो, संगठित करो तथा उनमें त्याग का मंत्र फूँक दो। भारतीय युवकों पर ही यह कार्य सम्पूर्ण रूप से निर्भर है (वि० सा० खंड ४ पृ० २८०) "युवकों। मैं गरीबों मूर्खों, उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ (वि० सा० ख० १ पृ० ४०५)

युवक कार्यकर्त्ताओं का प्रशिक्षण :

संन्यासियों की भाँति अविवाहित युवकों को प्रशिक्षण भी अत्यावश्क है। उन्हें किस प्रकार अपने ग्राम की उन्नति करनी चाहिए तथा शिक्षा एवं धर्म का प्रचार करने की बुद्धि होनी चाहिए। इसीलिए स्वामीजी ने कहा था "मेरा विचार है कि मैं अविवाहित युवकों को लेकर एक शिक्षा केन्द्र स्थापित करूँ। पहले उनको शिक्षा दूँ तत्पश्चात उनके द्वारा इस कार्य का प्रचार कराऊँ।" (वि० सा० खंड ६ पृ० १८)

स्थानीय युवकों द्वारा ग्रामोन्नयन :

स्वामीजी का यह पूर्ण विश्वास था कि बाहर से समाज सेवियों का दल लाकर किसी ग्राम की उन्नति करना असम्भव है। शहरों से, नगरों से शिक्षित समाज विज्ञानस्नातकों तथा समाज-सुधारकों की भीड़ गाँवों में

जाकर कार्य करती है। ये शहरी समाज-सुधारक अपने ग्रामोन्नयन सम्बन्धी विचारों को ग्रामवासियों पर मढ़ना चाहते हैं। इसीलिए ये विदेशी समाज-सुधारक प्रायः असफल रह जाते हैं। स्वामीजी कहते हैं "मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हूँ स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों पर यह उपदेश मढ़ने का साहस नहीं कर सकता कि तुम्हें इस भाँति चलना होगा दूसरी तरह नही—जिस ईंधन की जरूरत है देते जाओ, बस वह अपने ढंग से उन्नति करता जायगा, कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता।" (वि० सा० ख० ५ पृ० १०२)

स्थानीय ग्रामीण युवकों के द्वारा ही ग्रामोन्नयन-मूलक कार्य किये जाने चाहिए। यहाँ तक कि योजनाएँ वे ही बनावें। हमारा कार्य तो केवल शिक्षा देने का है, जड़भाव को दूर कर जागृति ला देने का है। स्वामीजी ने एक पत्र में इस प्रकार लिखा था "यदि लोगों को अपनी सहायता अपने आप करना न सिखाया जाय तो सारे विश्व की धनराशि एक छोटे से गाँव की सहायता करने में भी अक्षम है।" अतः हमारा कार्य स्थानीय युवकों को संगठित कर देना है—उनमें त्याग और सेवा का भाव लाने का प्रयास करना है, वे अपने ग्राम की स्वयं उन्नति किस प्रकार करें यह प्रशिक्षण देना है।

स्थानीय युवकों का कर्त्तव्य :

स्थानीय शिक्षित युवकों को मिलकर पहले एक संगठन बनाना चाहिए जिसमें महान् उद्यमी, साहसी वीर्यवान और आज्ञाकारी युवक रहें। इन युवकों के दिल में गरीब, मूर्ख एवं पददलित मनुष्यों के प्रति सहानुभूति की भावना तीव्र हो। ग्रामोन्नयन मूलक कार्यों के बारे में प्रशिक्षण, ग्राम में होनेवाले आपद-विपद में रक्षा करने की विद्या में शिक्षण अनिवार्य है। स्वामीजी के इन उपदेशों को वे न भूलें, "उत्साह, से हृदय भर लो—काम करो, काम करो। नेतृत्व करते समय सबके दास हो जाओ, निःस्वार्थ होओ।...सभी संगठनों का सत्यानाश इसी से होता है। काम करो दूसरों की भलाई के लिए काम करना ही जीवन है।"

(वि० सा० ख० ३ पृ० ३३५)

"तुम्हारे घर के पास बस्ती के पास कितने अभाव ग्रस्त लोग रहते हैं—जो पीड़ित है, उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो और शरीर द्वारा उसकी सेवा शुश्रूषा करो। जो भूखा है उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो। तुमने तो इतना पढ़ा-लिखा है अतः जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके समझाओ।" (वि० सा० ख० १० पृ० ३४३)

सर्वांगीण ग्रामोन्नयन :

सर्वांगीण ग्रामोन्नयन अर्थात् आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी, स्वास्थ्य एवं आर्थिक उन्नति का एक साथ होना अनिवार्य है क्योंकि ये सभी अंग एक दूसरे की उन्नति पर निर्भर करते हैं।

आध्यात्मिक—स्वामी जी ने इस सभी अंगों के मूल में आध्यात्मिकता को ही स्थान दिया है। उन्होने कहा था, 'पहले आध्यात्मिक सुधार हुए बिना समाज सुधार नहीं हो सकता। "(वि० सा० ख० ४ पृ० ३३१)"—विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचार करें, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो। (वि० सा० ख० ५ पृ० १४०)

सांस्कृतिक—अद्वैतज्ञान की यह भावना गाँव में एकता और पारस्परिक प्रेम का संचार करेगी। सभी ग्राम एक परिवार बन जायँ और प्रत्येक परिवार उसका एक सदस्य। ग्रामवासियों को यह समझाना होगा कि गाँव की उन्नति से ही प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति सम्भव है। स्वामीजी ने कहा था, 'समष्टि (समाज) के जीवन में व्यष्टि का जीवन है, समष्टि के सुख में व्यष्टि का सुख, समष्टि के बिना व्यष्टि का अस्तित्व असम्भव है। प्रेम मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न नहीं

करता,—समस्त विश्व को प्रेम अपने घर जैसा बना लेता है।" (वि० सा० ख० ४ पृ० २७८-८०) इस प्रकार त्याग और सेवा की भावना हमारे जीवन में सर्वोच्च स्थान ले पायेगी। तभी हमारे ग्रामवासी जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य एवं आदर्श की ओर बढ़ पायेंगे।

जीवन में सौन्दर्य और कला भी हमें उच्च आदर्शों की ओर ले जाती है। स्वामी जी ने इसकी महत्ता बताते हुए कहा था, "तुम नहीं जानते हमारे यहाँ कला हमारे धार्मिक जीवन का एक अंग बन गयी है? हमारे देश में कोई युवती तीज-त्यौहार पर्व उत्सव के दिन यदि घर के आँगन और भीत पर चावल के पीट्ठा से सुन्दर चित्र बनाती है, तो उसकी कितनी प्रशंसा होती है। श्रीरामकृष्ण स्वयं कितने महान् कलाकार थे।"

(वि० सा० ख० ८ पृ० २३४)

सामाजिक—स्वामी जी को बाल्यकाल से ही जाति-पाँती, छुआ-छूत, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुसंस्कारों से बड़ी ही घृणा थी। वास्तव में समाज व्यक्ति के लिए है, और व्यक्ति समाज के लिए नहीं। व्यक्ति समाज का एक अंग होता है। सामाजिक प्रथाएँ मनुष्य की सुख-सुविधाओं के लिए बनायी जाती हैं। समाज मनुष्य को अपना दास बनाकर, मन चाहे नियम बनाकर यदि अत्याचार करे तो वह समाज दूषित हो जाता है, उस समाज में व्यक्ति दुःखी ही रहता है—कभी उन्नति नहीं कर सकता। अतः सामाजिक उन्नति का अर्थ है सुखी, स्वाधीन, पारस्परिक प्रेमवाले व्यक्तियों का समाज। स्वामी जी कहते थे "उन्नति की पहली शर्त है स्वाधीनता। जैसे मनुष्य को सोचने-विचारने और उसे व्यक्त करने की स्वाधीनता मिलनी चाहिए वैसे ही उसे खान-पान, पोशाक-पहनावा, शादी, हरेक बात में स्वाधीनता मिलनी चाहिए जबतक कि वह दूसरे को हानि न पहुँचाए।

(वि० सा० ख० ३ पृ० ३३३)

आर्थिकोन्नति—स्वामीजी ने कहा था, 'भारतवर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है-जनसाधारण की गरीबी' (वि० सा० ख० २ पृ० ३६९) रोटी, कपड़ा और धन-राशि ढाल देने से गरीबी दूर नहीं हो सकती। आत्म-निर्भरता अति आवश्यक है। किसी-किसी गाँव में देखा गया है कि भिखारी की वार्षिक आय गाँव के ८०% व्यक्तियों से अधिक होती है किन्तु फिर भी वह भिखारी ही रहता है। और फिर भीख द्वारा प्राप्त धन के उपयोग में न तो आत्मसम्मान ही है और न स्वाभिमान। बल्कि ऐसा व्यक्ति सदा-सदा के लिए निकम्मा हो जाता है। दया और तिरस्कार द्वारा प्राप्त धन उसकी उन्नति में बाधा बना रहता है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, 'किसी मनुष्य के मुँह में यदि सदा कोई दूसरा ही अन्न डाला करता हो, तो उस मनुष्य की स्वयं हाथ उठाकर खाने की शक्ति क्रमशः लुप्त हो जाती है। सभी विषयों में जिसकी रक्षा दूसरों द्वारा होती है, उसकी आत्मरक्षा की शक्ति क्रमशः लुप्त हो जाती है। सदा राजा का मुँह ताकने के कारण वह (प्रजा) धीरे-धीरे जीर्ण और निकम्मी हो जाती है। यह पालन और रक्षण ही बहुत दिनों तक रहने में सत्यानाश का कारण होता है।"

(वि० सा० ख० ९ पृ० २०३)

किन्तु स्वामीजी नौकरी के लिए दर-दर भटकने के पक्ष में नहीं थे। वर्तमान शिक्षा हमें केवल बाबू बनाने वाली शिक्षा है। एक शिक्षित युवक पुस्तकों को रटकर डिग्री इत्यादि ले सकता है, इसके अधिक कुछ भी नहीं। स्नातकों की संख्या इतनी बढ़ रही है कि बेरोजगारी की समस्या सुलझाने की जगह और अधिक उलझती जा रही है। एक शिक्षित युवक या युवती का रहन-सहन बड़ा महँगा हो उठता है परन्तु कमाने-खाने की सामर्थ्य उसमें नहीं। इसीलिए स्वामीजी कहते थे, वर्तमान शिक्षा से तुम्हारा सिर्फ बाहरी परिवर्तन होता जा रहा है परन्तु नयी-नयी उद्भावनी शक्ति के अभाव से तुम लोगों को धन कमाने का उपाय उपलब्ध नहीं हो रहा है।.....जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन-संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्रबल, परहित भावना और सिंह के समान साहस नहीं ला

सकती, वह भी कोई शिक्षा है ? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है वही शिक्षा है।" (वि० मा० ख० ६, पृ० १०६)

आधुनिक शिक्षा के कारण लाखों बुद्धिजीवी मनुष्य खेती-बाड़ी के कठिन काम को छोड़कर थोड़े शारीरिक श्रम से होनेवाले कामों में जुटना चाहते हैं। हमारे गाँव में उत्पन्न पाट, कपास आलू इत्यादि सस्ते दामों पर बिकते हैं और इन्हीं बस्तुओं से तैयार बोरे, टाट, थैले और कपड़े इत्यादि शहरों से तैयार होकर चढ़े हुए दामों में आते हैं। यदि हम उन्नति चाहें तो गाँव में उत्पादित द्रव्यों से तैयार माल गाँव में ही बनाकर बाहर भेजने से आर्थिक समस्या सुलझ सकती है। स्वामीजी ने इस प्रसंग में कहा था, "भारत में जो चीजें उत्पन्न होती हैं, विदेशी उन्हीं को ले जाकर अपनी बुद्धि से अनेक प्रकार की चीजें बनाकर सम्पत्ति-शाली हो गए हैं, और तुमलोग अपनी बुद्धि सन्दूक में बन्द करके घर का धन दूसरों को देकर 'हा अन्न' करके भटक रहे हो।"

महिलाएँ भी जीवकोपार्जन करें :

लड़कियों के योग्य कार्यों को निर्दिष्ट करते हुए स्वामीजी ने कहा था, प्राचीन कलाओं को पुनरुज्जीवित करें। अपनी लड़कियों को खोये से फलों के नमूने बनाना सिखाओ। उन्हें कलात्मक पाक-क्रिया और सीना-पिरोना सिखाओ। उन्हें चित्रकला, फोटोग्राफी, सोने-चाँदी, कागज, जरी, कसीदाकारी और चित्र बनाने की शिक्षा दो। इसका ध्यान रखो कि प्रत्येक को किसी-न-किसी ऐसी कला का ज्ञान हो जाय, जिसके द्वारा आवश्यकता पड़ने पर वे अपनी जीविका अर्जन कर सकें।"

(वि० सा० ख० ८ पृ० १४०)

स्वास्थ्य-सुख :

स्वामीजी ने सदा ही शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बल की बात कही है। शारीरिक बल पर अधिक जोर दिया है, क्योंकि स्वस्थ शरीर रहने पर मानसिक एवं आध्यात्मिक बल बढ़ाया जा सकता है। बच्चों में व्यायाम और खेलकूद का अभ्यास कराना चाहिए। गाँव में स्वास्थ्य एवं सफाई इत्यादि पर भी स्वामीजी ने बहुत जोर दिया है। श्री हरिपद मित्र ने अपने संस्मरण में लिखा था 'ग्राम के एक ही तालाब में स्नान, शौच आदि करना एवं उसी का पानी पीना यह प्रथा उन्हें बिल्कुल पसन्द न थी।" (वि० सा० ख० १० पृ० ३३३) अन्यत्र स्वामीजी ने कहा था, "जो पीड़ित है उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो और शरीर द्वारा उसकी सेवा सुश्रुषा करो।

(वि० सा० ख० १० पृ० ३४३)

प्रौढ़-शिक्षा एवं रात्रि पाठशाला :

ग्रामोन्नयन के मूल में है शिक्षा। यहाँ शिक्षा का अर्थ पढ़ना-लिखना ही नहीं है, बल्कि अपने पैरों पर खड़े होने की शिक्षा, विश्व-सम्बन्धी ज्ञान तथा उन्नति का रास्ता जानना है। स्वास्थ्य, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में उन्नति शिक्षा द्वारा की जानी चाहिए। स्वामीजी ने कहा 'तुम्हें एक नयी युक्ति बताऊँ। सब मिलकर एक संगठित योजना बनाओ। कुछ कैमरे, कुछ नक्शे, ग्लोब कुछ रासायनिक पदार्थ आदि की आवश्यकता है। .....बाद में कुछ गरीबों को इकट्ठा कर लेना है। इसके बाद उन्हें ज्यातिष, भूगोल आदि के चित्र दिखलाओ और उन्हें श्री रामकृष्ण परमहंस के उपदेश सुनाओ।"(वि० सा० ख० ३ पृ० ३५२) गाँवों में समस्या यह है कि ३-४ वर्ष की उम्र से ही बच्चा काम में लग जाता है अतः कितने भी स्कूल खोलें ग्रामवासी अशिक्षित ही रहेंगे। इसीलिए स्वामीजी कहते थे, "अगर यह भी मान लिया जाय कि प्रत्येक गाँव में हम लोग निःशुल्क पाठशाला खोलने में समर्थ हैं, तब भी गरीब लड़के पाठशाला में आने की अपेक्षा अपने जीविकोपार्जन हेतु हल चलाने जाएंगे। .....समस्या निराशाजनक प्रतीत होती है। मैंने एक रास्ता ढूँढ़ निकाला है। वह यह है। अगर पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आता

तो मुहम्मद को पहाड़ के पास जाना पड़ेगा। यदि गरीब शिक्षा के निकट नहीं आ सकता, तो शिक्षा को ही हल पर, कारखाने में और हर जगह गरीब के पास पहुँचना होगा। (वि० सा० ख० २ पृ० ३६६)

"वहाँ जितने गरीब अनपढ़ रहते हों, सुबह शाम या किसी समय भी उनके घर जाकर उन्हें जानकारी दो। पोथी-पत्रों का काम नहीं—जबानी शिक्षा दो।" (वि० सा० ख० ३ पृ० ३५२)

ग्रामोन्नयन से ही देश की उन्नति सम्भव है ऐसी स्वामीजी की पक्की धारणा रही है। उन्हीं की वाणी को संकलित करते हुए मैंने स्वामीजी ग्रामोन्नयन कार्य किस प्रकार चाहते थे इस पर प्रकाश डाला है। इस प्रकार कार्य करने से भारत का क्या हो जायगा, स्वामीजी का यह सुन्दर स्वप्न उन्हीं की वाणी में इस प्रकार है।

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़ कर, किसानों की कुटी भेदकर, जाली, माली मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।"

स्वामी विवेकानन्द और अज्ञेयवादी इंगरसोल

—ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य
रामकृष्ण मठ, नागपुर।

रावर्ट ग्रीन इंगरसोल का जन्म अमेरिका के ड्रेसडेन नामक स्थान में ११ अगस्त १८३३ ई० को हुआ था। उनके अशिक्षित होने के बावजूद, उनकी प्रतिभा तथा वाग्वैभव के कारण २१ वर्ष की आयु में ही उन्हें इलिनाएस बार में एक कानूनी अधिवक्ता के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। न्यूयार्क तथा वाशिंगटन में भी उनकी वकालत काफी चल निकली थी। परवर्त्ती काल में वे इलिनाएस प्रान्त के एटार्नी-जनरल नियुक्त हुए। आगे चलकर अमेरिका की सक्रिय राजनीति में भाग लेकर उन्होंने काफी महत्वपूर्ण कार्य किये। राजनीतिक क्षेत्र में विशेष नाम होने के बावजूद उनके धर्म विरोधी विचारों के कारण उन्हें सरकार में कोई उच्च पद न मिल सका था।

एक लोकप्रिय वक्ता के रूप में ही वे सर्वाधिक प्रसिद्ध थे। अपने व्याख्यानों के माध्यम से उन्होंने बाइबिल की उच्चतर समालोचना, वैज्ञानिक बुद्धिवाद तथा एक मानवतावादी दर्शन का प्रचार किया और वे एक 'महान अज्ञेयवादी' के रूप में जाने जाने लगे। अमेरिका पहुँचने के कुछ काल बाद ही स्वामीजी ने उनकी लोकप्रियता से अवगत कराते हुए आलासिंगा को लिखा था—"व्याख्यान देना इस देश का बड़ा लाभकारी व्यवसाय है और कभी-कभी उससे खूब धन भी प्राप्त होता है। श्री इंगरसोल को प्रति व्याख्यान पाँच सौ से लेकर छः सौ डालर तक मिलते हैं। इस देश में वे बड़े प्रसिद्ध वक्ता हैं।" कभी-कभी तो उनके एक ही संध्या के कार्यक्रम से कई हजार डालर तक की आय हुआ

करती थी। इंगरसोल के व्याख्यानों के कई संकलन भी प्रकाशित हुए थे, जिनमें प्रमुख हैं—'हजरत मूसा की कुछ भूलें' (१८७९ ई०), 'मैं अज्ञेयवादी क्यों हूँ' (१८९६ ई०) इत्यादि। २१ जुलाई १८९९ ई० के दिन उनका देहावसान हुआ। तदुपरांत १९०२ ई० में उनकी ग्रन्थावली १२ खण्डों में प्रकाशित हुई थी।

शिकागो धर्म-महासभा की समाप्ति के पश्चात् स्वामीजी की उसी नगर में उनसे एकाधिक बार मुलाकात हुई थी तथा विविध दार्शनिक विषयों पर चर्चा भी हुई थी। हमें यह पता नहीं कि वे कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में मिले थे, परन्तु स्वामीजी की जीवनी तथा अन्य ग्रन्थों का अवलोकन करने से उनके बीच हुई वार्तालाप का हमें थोड़ा सा आभास मिलता है। इंगरसोल काफी वर्षों से ईसाई धर्म में फैली रूढ़ियों, भ्रान्तियों, अन्धविश्वासों तथा कुरीतियों की, जो कि आधुनिक विज्ञान तथा युक्तिवाद की विरोधी थीं, समालोचना किया करते थे। वे धर्म को त्यागकर उपयोगितावादी हो गये थे और इस वजह से उन्हें कट्टर ईसाई समाज का कोपभाजन भी बनना पड़ा था। दूसरी ओर स्वामीजी भी तर्कसंगत व विज्ञान सम्मत अद्वैतवाद के पक्ष में यदा-कदा ईसाई अन्धविश्वासों की कलई खोलकर रख देते थे। अतः बातचीत के दौरान इन महान् अज्ञेयवादी ने स्वामीजी को सावधान करते हुए कहा कि उन्हें लोगों की जीवनपद्धति तथा रूढ़िवाद की आलोचना करते समय थोड़ा संयम बरतना उचित होगा और ज्यादा स्पष्टवादी होना उनके लिए खतरनाक साबित हो सकता है। इस प्रसंग में इंगरसोल ने कहा था—"यदि आप कोई पचास वर्ष पूर्व यहाँ पर ज्ञान सिखाने को आये होते तो आपको फाँसी पर चढ़ा दिया जाता या फिर जीवित जला दिया जाता। यहाँ तक कि यदि आप उसके काफी बाद भी आये होते तो आपको गाँवों से पत्थर मार कर निकाल दिया गया होता।" स्वामीजी को पाश्चात्य जनता की इस धर्मान्धता की बात सुनकर ज्यादा विस्मय नहीं हुआ, क्योंकि शिकागो के मेले में हुआ उनका कटु अनुभव अभी ताजा ही था, जबकि एक पढ़े-लिखे तथाकथित सुसभ्य अमेरिकन ने उनके कपड़े का छोर पकड़कर खींचा था फिर उन्हें अंग्रेजी बोलते देखकर माफी भी माँगी थी। धर्म के मामले में पाश्चात्य देशवासी तब भी इतने उदार न हो सके थे। तो भी इंगरसोल, जहाँ धर्मध्वंसी थे, वहाँ स्वामीजी सिर्फ धार्मिक संकीर्णता के ध्वंसी थे। अतः स्वामीजी को विरोध तो काफी मिला था पर साथ ही समर्थन भी कम न मिला था।

यद्यपि दोनों ही सत्य और मानवतावाद के प्रचारक थे, परन्तु दोनों की विचारधारा में आकाश-पाताल का अन्तर था। इंगरसोल अपने बुद्धिवाद तथा तर्कशक्ति के बल पर सभी धार्मिक विचारों का विरोध किया करते थे, जबकि स्वामीजी बुद्धिवादी होने के बावजूद सभी धर्मों को सत्य मानते थे, ईसा मसीह के प्रति भी श्रद्धा रखते थे तथा वर्तमान वैज्ञानिक युग के उपयुक्त एक नवीन धर्म का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। इन दोनों विश्वविख्यात वक्ताओं के दृष्टिकोण का पार्थक्य उनके बीच हुई निम्नलिखित वार्ता से स्पष्ट हो जाता है। इंगरसोल ने उनसे कहा था—"इस जगत् से जितना अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके, उसे प्राप्त करने की चेष्टा सभी को करनी चाहिए—यह मेरा विश्वास है। सन्तरे को दबाकर जितना भी हो सके, हम सारा रस निचोड़ लें, ताकि रस की एक बूँद भी व्यर्थ न जाय—क्योंकि हमें इस जगत् को छोड़ किसी परलोक के अस्तित्व के बारे में प्रमाण नहीं मिलता है। तो फिर इस जीवन को एक झूठी आशा के आधार पर सांसारिक सुखों से वंचित करने में क्या लाभ है? पता नहीं कब मौत आ जाय, अतः जहाँ तक सम्भव हो तत्परता के साथ इस जगत का उपभोग करना चाहिए।"

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"इस जगत् रूपी सन्तरे को निचोड़ने की मैं आपकी अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट प्रणाली जानता हूँ—और मुझे उससे अधिक रस की प्राप्ति होती है। मैं जानता हूँ, मेरी मृत्यु नहीं है, अतएव मुझे रस निचोड़ने की जल्दी नहीं है। मुझे

जगत् से किसी प्रकार के भय का कोई कारण नहीं है—अतः आनन्दपूर्वक निचोड़ता हूँ। मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है, मुझे स्त्री-पुत्रादि और विषय सम्पत्ति का कोई बन्धन नहीं हैं, मैं सभी नर-नारियों से प्रेम रख सकता हूँ। सभी मेरे लिये ब्रह्मस्वरूप हैं। मनुष्य को भगवान समझकर उसके प्रति प्रेम रखने में कितना आनन्द है! मैं निश्चिन्त होकर रसपान कर रहा हूँ। सन्तरे को इस प्रकार निचोड़कर देखिए—अन्य प्रकार से निचोड़ने पर आपको जो रस मिलेगा, उसकी अपेक्षा इस प्रकार निचोड़ने पर आप दस हजार गुना रस पायेंगे। एक बूँद भी बाकी न रहेगी।"

स्वामीजी ने और भी कहा था—"आप समझते हैं कि संसार में आकर खूब खा-पीकर और कुछ वैज्ञानिक तथ्य जान लेने से ही बस पर्याप्त हो गया; पर आपको यह कहने का कोई अधिकार नहीं कि इसे छोड़कर मनुष्य का और कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। मेरे लिये तो यह धारणा बिल्कुल तुच्छ है।···मेरा संकल्प है कि मैं सभी वस्तुओं के मर्म की खोज करूँगा—जीवन का वास्तविक रहस्य क्या है, यह जानूँगा।···मैं सभी वस्तुओं का क्यों जानना चाहता हूँ—'कैसे होता है' यह खोज बालक करते रहें।" इंगरसोल सम्भवतः यह उत्तर सुनकर मौन रह गये थे।

एकबार स्वामीजी ने भगिनी निवेदिता के नाम अपने एक पत्र में लिखा था—"इंगरसोल ने एकबार कहा था कि यदि वे भगवान होते तो रोगों को संक्रामक न बनाकर स्वास्थ्य को ही संक्रामक बनाते। किन्तु स्वास्थ्य भी रोगों की तुलना में समान भाव से संक्रामक है—यह बात एकबार भी उनके ध्यान में नहीं आयी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी भी वाग्मिता में इंगरसोल से कम न थे। एक पत्रिका ने तो उनके व्याख्यान का समाचार देते हुए लिखा था---"इन हिन्दू संन्यासी ने डिट्रायट नगर में इंगरसोल से भी अधिक श्रोताओं को आकर्षित किया था।" इंगरसोल जैसे विख्यात व नास्तिक व्यक्ति के साथ स्वामीजी का इतना आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि अमेरिका के बुद्धिजीवी वर्ग में वे अत्यन्त प्रभावी हो उठे थे। एकबार स्वामीजी ने कहा था कि एक मिथ्याचारी धार्मिक होने की अपेक्षा एक सच्चा नास्तिक होना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। इसीलिए इंगरसोल के सतही ज्ञान के बावजूद भी स्वामीजी उनकी सरलता, सच्चाई तथा स्पष्टवादिता के कारण उनके प्रति प्रेम-भाव रखते थे।

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत् स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

षष्ठ अनुवाक

कस्तरति कस्तरति मायाम् ? यः सङ्गां-स्त्यजति, यो महानुभावं सेवते, यो निर्ममो भवति ॥४६॥

कः (कौन) मायां (माया को) तरति (अतिक्रम कर पाते हैं), कः (कौन) तरति (अतिक्रम कर पाते हैं) ? यः (जो) सङ्गान् (आसक्तियों का) त्यजति (त्याग करते हैं), यः (जो) महानुभवं (महत् व्यक्तियों की) सेवते (सेवा करते हैं), यः (जो) निर्ममः (निर्मम) भवति (हैं) ॥ ४६

माया का कौन अतिक्रम कर पाते हैं ? वे कैसे व्यक्ति होते हैं ? जो आसक्ति का त्याग करते हैं, महापुरुषों की सेवा करते हैं, ममता का त्याग करते हैं, वे ही माया का अतिक्रमण कर पाते हैं ॥४६

अब तक क्रमशः कई सूत्रों में भक्ति-साधना के उपायों का श्रीनारद ने वर्णन किया है। इष्ट के प्रति एकनिष्ठ भक्ति प्राप्त करना समस्त साधनाओं का लक्ष्य है। इस भक्ति की प्राप्ति के प्रतिबन्धक तत्व जिससे समाप्त हो जायें उसकी केष्टा करनी होगी, फिर साथ-ही-साथ भक्ति की जिससे वृद्धि हो, भाव जिससे घनीभूत हो, उसके उपाय का भी अवलम्बन करना होगा।

माया के बन्धन को मिटाना बहुत आसान बात नहीं है। इसके लिए चाहिए प्रबल दृढ़ता। एकनिष्ठ साधना पर जोर देने के लिए पुनरावृत्ति करते हुए नारद कहते हैं कि इस दुस्तरा माया का कौन अतिक्रम करता है ? इस दुरतिक्रम माया का अतिक्रम करने में कौन समर्थ होता है ?

माया के हाथ से मुक्ति लाभ करने के लिए, भक्ति लाभ करने के लिए, पहले चाहिए चित्तशुद्धि। अन्तः-करण में प्रबल विषयासक्ति रहने पर भक्ति की प्राप्ति संभव नहीं। 'सङ्ग' कहने से विषयासक्ति भी जानी जाती है और असत्सङ्ग भी समझा जाता है। असत्सङ्ग, त्याज्य है यह पहले ही विशेषरूप से कहा गया है। अभी श्रीनारद कहते हैं, विषयासक्ति का त्याग नहीं करने पर माया के हाथ से छूटा नहीं जा सकता। साधना के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति के लिए इन्द्रियभोग्य वस्तुओं से भी दूर रहना होगा।

सत्संग, साधुकृपा भक्ति प्राप्ति के प्रधान अवलम्बन हैं, यह कह चुके हैं। अभी श्री नारद कहते हैं, केवल सत्संग करना ही यथेष्ट नहीं हुआ; श्रद्धापूर्वक साधु और गुरु की सेवा भी करनी चाहिए।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। गी० ४/३४

प्रणिपात, प्रश्न और सेवा के द्वारा प्रसन्न कर तत्वदर्शी पुरुष से ज्ञान लाभ करना होगा।

श्री मद्भागवत में भगवान श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं—

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥

भा० ११।२६।३२

'इस भयंकर संसार-सागर में पड़कर जो लोग गोते खाते हैं—कर्म के विपाक से कभी ऊँची, कभी नीची योनि में जन्म-ग्रहण करते हैं—ब्रह्मविद्, शान्त, साधुगण ही उनलोगों के उद्धार के लिए नौका के समान हैं।'

यथोपश्रयमानस्य भगवन्तं विभावसुम् ।

शीतं भयं तमोऽप्योति साधून् संसेवतस्तथा ।

भा० ११।२६।३१

'जिस प्रकार अग्नि का आश्रय ग्रहण करने पर शीत, भय और अंधकार तीनों एक ही साथ दूर हो जाते हैं, उसी प्रकार साधुसेवा के फलस्वरूप साधन भजन में जड़तारूपी शीत, बार-बार संसार में आवागमन का भय तथा संसार-बन्धन का मूलकारण अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो जाते हैं ।'

और केवल शारीरिक सेवा भी यथेष्ट नहीं है । उनलोगों के उपदेशानुसार साधन-भजन तथा अपने जीवन का गठन नहीं करने पर कुछ भी नहीं हुआ ।

सांसारिक वस्तु के प्रति ममत्वबोध आसक्ति के त्याग और साधुसेवा के पथ की एक प्रबल बाधा हैं—भक्तिलाभ का एक विषम व्यवधान है। इसी से नारद कहते हैं—जो निर्भय हैं, वे माया-नदी का अतिक्रम करने में समर्थ हैं। निर्मम कहने का अर्थ निष्ठुर नहीं है; संसार में जितने अनित्य पदार्थ हैं उनके प्रति 'मेरा-मेरा' के ज्ञान को 'ममता' कहते हैं; इस ममता का परित्याग कर देना निर्मम होना है। इस ममता के कारण हमलोग इष्ट को भूलकर खूब मजे में रहते हैं—जैसे छोटा बच्चा चुसना (चूसनेवाली लकड़ी) पाने पर माँ को भूलकर खूब खेला करता है ।

माया का स्वरूप क्या है ?

"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या । माया के कारण अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं । तिकोने काँच से देखने पर अनेक रंग देखे जाते हैं—किन्तु बाहर में वस्तुतः कोई रंग नहीं है । इसी प्रकार ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, किन्तु माया के कारण, अहंकार के कारण अनेक वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं ।

"यह संसार ईश्वर की माया है । माया के कारण सत् या नित्य असत् या अनित्य जैसा प्रतीत होता है, और फिर अनित्य नित्य जैसा लगता है। माया के कार्यों के भीतर कई गड़बड़ियाँ हैं, कुछ समझा नहीं जाता ।"

"ईश्वर की महामाया के कारण यह जगत्-संसार है । इस माया के भीतर विद्यामाया और अविद्यामाया, दोनों ही हैं, विद्यमाया का आश्रय ग्रहण करने पर साधुसंग, ज्ञान, भक्ति, प्रेम, वैराग्य ये सब होते हैं। अविद्यामाया—पंचभूत और इन्द्रियों के विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द—इन्द्रियों के भोग की जितनी वस्तुएँ हैं, ये सब ईश्वर को भुला देती हैं।"

अनेक समय अज्ञान के वशीभूत हो, आसक्ति के वशीभूत हो किसी व्यक्ति को भी प्रेम नहीं करना या उसके शुभ-अशुभ की चिन्ता से अपने को जड़ीभूत नहीं करना संभव नहीं हो पाता; किन्तु उसे निःस्वार्थभाव से मैं प्यार करता हूँ, उसके कल्याण-साधन के लिए व्यस्त हूँ, इस प्रकार सोचकर आत्मिक प्रसन्नता हमलोग प्राप्त करते हैं। किन्तु, "दया और माया ये दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं। पिता-माता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र, भतीजा, भांजा, भतीजी, इन सब आत्मीयों के प्रति जो आकर्षण है उसे माया कहते हैं। मेरी वस्तु, मेरी वस्तु---कहकर उन सब वस्तुओं के प्रति प्रेम करने का नाम माया है। और सब के प्रति प्रेम, सभी देशों के लोगों के प्रति प्रेम, इसका नाम है दया। माया से मनुष्य बद्ध होता है, भगवान से विमुख होता है। दया से ईश्वर-लाभ होता है।....."

संसार में इस अविद्यामाया का प्रथम प्रकाश अहं रूप में और परवर्ती प्रकाश—काम और लोभ के रूप में—कामिनी कांचन की आसक्ति के रूप में व्यक्त होता है ।

"जीव का अहंकार ही माया है। यह अहंकार सब कुछ आवरण कर रखे हुए है। 'मैं' को मिटाने से ही जंजाल मिटेगा। मेघ ने सूर्य को ढक रखा है। मेघ के हट जाने पर सूर्य को देखा जा सकता है। यह माया अहं मानो मेघ है। गुरु की कृपा से इस अहंबुद्धि के मिट जाने पर ही ईश्वर दर्शन होता है।.....यह

देखो, मैं इस अँगोछे को मुँह पर रखकर ओट करता हूँ। मैं इतना निकट रह रहा हूँ, तब भी मुझे देख नहीं पाते हो। इसी प्रकार भगवान सबके समीप हैं, तब भी इस माया रूपी आवरण के कारण उन्हें नहीं देख पाते हो।"

जब तक ईश्वर दर्शन नहीं होता तब तक 'मैं कर्त्ता हूँ'—यह भूल बनी रहेगी। 'मैं सत् कार्य कर रहा हूँ, असत् कार्य कर रहा हूँ,'—ये भेद-बोध रहेंगे ही। यह भेद-बोध ईश्वर की ही माया है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए विद्यामाया का आश्रय ग्रहण करना होगा, सत्पथ पर चलना होगा। जो ईश्वर को प्राप्त करता है वही माया को पार कर पाता है।"

"ईश्वर को क्या समझा जा सकता है? अपनी माया से उन्होंने सबकुछ को ढँक रखा है। कामिनी-कांचन माया है। इस माया को हटाकर जो ईश्वर का दर्शन करता है वही उनको प्राप्त करता है। जलकुंभी से ढँके पोखर में ढेला मारने पर थोड़ा सा जल दिखाई पड़ता है, फिर दूसरे ही क्षण कुंभी नाचते-नाचते आकर जल को ढक लेती है। तब अगर कुंभी को हटाकर बाँस में बाँध दिया जाय तब फिर बाँस को ठेलकर वह आगे आ नहीं पाती। इसी प्रकार माया को हटाकर ज्ञान-भक्ति का बाड़ा लगा देने पर फिर माया उसके भीतर प्रवेश नहीं कर पाती। सच्चिदानन्द ही एकमात्र अपने को प्रकाशित करते है।···सच्चिदानन्द माया रूपी जलकुंभी से ढँके हैं; जो उसे हटाकर जल पीता है, वही पाता है।"

"कामिनी काँचन ही माया है। माया को यदि पहचान पाओ तो माया स्वयं भाग जायगी। हरिदास बाघ की खाल पहनकर एक बच्चे को डरा रहा था। जिसे डरा रहा था उसने कहा, 'मैं पहचानता हूँ। तुम हमलोगों के हरि हो।' तब वह हँसते-हँसते चला गया। ईश्वर सत्य हैं, और जो कुछ है सब माया के कार्य हैं।"

"तुम कहते हो, संसार करना ईश्वर की इच्छा है। किन्तु, कौन सी उनकी इच्छा, और कौन सी अनिच्छा—तुम क्या सब जानते हो? क्या उनकी इच्छा है कि सभी कुत्तों की तरह कामिनी कांचन में मुँह डुबाए रहें। जब स्त्री-पुत्र मरते हैं, या भोजन नहीं पाते हो, तब भगवान की इच्छा क्यों नहीं देख पाते हो? माया हम-लोगों को ईश्वर की इच्छा जानने नहीं देती। इसीसे अनित्य नित्य सा प्रतीत होता है, नित्य अनित्य लगता है। उनकी माया से ही 'मैं कर्त्ता हूँ'—यह बोध होता है। संसार अनित्य है किन्तु उनकी माया से लगता है कि यही सत्य है। और स्त्री-पुत्र, भाई-बहन, पिता-माता, घर-द्वार, ये सब मेरे हैं, ऐसा बोध होता है।"

मायाबद्ध जीव की अवस्था का वर्णन—

"रेशम का कीड़ा जैसे अपने ही रेशे से घर बना-स्वयं उसमें बँध जाता है, उसी प्रकार संसारी जीव अपने कर्मों से स्वयं बँध जाता है। रेशम के कीड़े को जैसे अपना घर छोड़कर बाहर आने में ममता लगती है, और बाद में मृत्यु हो जाती है। किन्तु, मन में संकल्प कर लेने पर अपने गोले को काटकर बाहर आ सकता है, बद्धजीव भी वैसा ही है।·····बद्धजीव को संसार से हटाकर अच्छी जगह रखो, तो वह व्यथित होकर मर जायगा। पखाने का कीड़ा विष्ठा में ही खूब हृष्ट-पुष्ट होता है। यदि उसे भात की हाँड़ी में रखो तो वह मर जायगा। बद्धजीव अपने और परिवार के लोगों के पेट के लिए नौकरी करता है। वह झूठ बोलकर, छल के द्वारा तथा खुशामद कर धन उपार्जन करता है।"

"बद्धजीव केवल कामिनी-कांचन को लिये हुए हैं। उनके हाथ-पाँव कामनी-कांचन से बंधे हुए हैं। वे ईश्वर का तनिक भी चिंतन नहीं करते, किन्तु मन में सोचते हैं, इस कामिनी और कांचन से ही सुख मिलेगा और हम निर्भय होकर रहेंगे। वे यह नहीं जानते कि उन दोनों से ही मृत्यु होगी। संसार मे अनेक दुःख, कष्ट और विपत्तियों में पड़कर भी बद्धजीव को बोध नहीं होता। जिस काम से इतने दुःखों का भोग करते हैं

उस काम को ही वे फिर करते हैं। जैसे ऊँट को काँटा खाने में अच्छा लगता है। खाते-खाते मुँह से तड़-तड़-कर रक्त बहने लगता है तब भी वह काँटा खाना नहीं छोड़ेगा।"

"बद्धजीव अगर अवसर पाते हैं तब इधर-उधर की फालतू बातें करते हैं, नहीं तो बेकार के काम करते हैं कहते हैं 'मैं चुप होकर रह नहीं पाता।" शायद समय नहीं कटते देख ताश खेलना शुरू कर देते हैं। फिर माया का ऐसा खेल है कि कोई व्यक्ति मृत्यु शय्या पर सोया हुआ भी यदि देखता है कि दीये में बाती तेज जलती है तो कहता है, 'तेल खत्म हो जायगा, बाती को कम कर दो।' जो लोग ईश्वर चिन्तन करते हैं उन्हें पागल कह कर उनकी हँसी उड़ाता है। फिर उसकी कभी जैसे साँप-छुछुन्दर की गति हो जाती है। न निगल पाता है, न उगल पाता है। बद्धजीव कभी-कभी समझते हैं कि संसार में सार वस्तु कुछ नहीं है, जैसे आमड़ा में केवल गुठली और छिलका होते हैं, तब भी उसे छोड़ नहीं पाते—तब भी ईश्वर की ओर मन नहीं दे पाते। यदि संसारी जीव तीर्थ करने जाता है तो स्वयं ईश्वर चिन्तन करने का समय नहीं पाता, केवल परिवार के लोगों की गठरी ढोते उसके प्राण जाते हैं।··· संसारी लोग तीन व्यक्तियों के दास होते हैं, उनलोगों को क्या कोई सार पदार्थ रहता है ? वे स्त्री के दास, रुपया के दास और मालिक के दास होते हैं।

"भगवान की शरणागत क्या सहज हुआ जाता है ? महामाया का ऐसा खेल है कि क्या वह शरणागत होने देती है ? जिसके तीन कुलों में कोई नहीं है उसे एक बिल्ली पोसने देकर उससे संसार कराती है। वह भी बिल्ली के लिए मछली और दूध का इन्तजाम घूम-घूम कर करेगी और कहेगी, 'मछली और दूध नहीं होने पर बिल्ली खाती ही नहीं, क्या करूँ ? (क्रमशः)

श्री माँसारदा जयन्ती

छपरा, १५ दिसम्बर। स्थानीय रामकृष्ण आश्रम में श्रीमाँ सारदा देवी का १३२वाँ जन्मोत्सव समारोह धूमधाम से मनाया गया। प्रातःकालीन मंगलारती के उपरान्त चण्डीपाठ, हवन, और विशेष पूजा हुई। प्रसाद वितरण के बाद अपराह्न ३ बजे श्रीमाँ सारदा के जीवन चरित्र पर प्रवचन का कार्य प्रो० ललित कुमार सिन्हा की अध्यक्षता में हुआ। आश्रम के सचिव डॉ केदारनाथ लाभ ने श्री सारदा देवी के जीवन-चरित्र एवं उपदेशों पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला। डॉ० जर्नादन शर्मा रीडर, अंग्रेजी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज ने स्वामी अनन्यानन्द द्वारा माँ सारदा पर लिखित एवं प्रबुद्ध भारत में प्रकाशित लेख Holiness without a shadow के हिन्दी अनुवाद का वाचन किया। श्री अखिलेश्वर प्रसाद ने माँ के जीवन विषयक घटनाओं पर प्रकाश डाला। प्रो० ललित कुमार सिन्हा ने रामकृष्ण आश्रम, छपरा के विकास में योगदान करने की लोगों से अपील की। हिन्दी और बंगला के स्थानीय साहित्यकार श्री अमियनाथ चटर्जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

रायपुर, १५ दिसम्बर। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, मध्यप्रदेश में श्रीमाँ सारदा का १३२वाँ जयन्ती महोत्सव मंगलारती, प्रातः वन्दना, ध्यान, विशेष पूजा, हवन, आरती, सान्ध्य आरती, भजन आदि के साथ सोल्लास मनाया गया। १६ दिसम्बर को सत्संग भवन में जन्मोत्सव सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ जिसमें श्री माँ के अनेक अनुरागी भक्तों ने भाग लिया।

स्वामी विवेकानन्द की १२३वीं जयन्ती

रायपुर। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्वावधान में स्वामी विवेकानन्दजी का १२३वाँ जयन्ती महोत्सव आश्रम के प्रांगण में १३ जनवरी, ८५ से १० फरवरी ८५ तक मनाया जायगा। समारोह का उद्घाटन २७ जनवरी को सायकाल ६ बजे सम्पन्न होगा। इस अवसर पर विशेष पूजा, हवन, आरती के अतिरिक्त "स्वामी विवेकानन्द और विश्व-शान्ति" विषय पर अंतर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता, अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता का भी आयोजन होगा। इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन है। २८ जनवरी को स्वामी आत्मानन्दजी महाराज 'श्री माँ सारदा—जीवन और संदेश विषय पर आध्यात्मिक प्रवचन देंगे। २९ जनवरी से ७ फरवरी तक पं० रामकिंकरजी महाराज रामायण पर प्रवचन देंगे तथा ८ से १० फरवरी तक श्री राजेश रामायणी के आध्यात्मिक प्रवचन होंगे।

खेतड़ी (राजस्थान)। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द स्मृति मन्दिर में आयोजित युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी का जन्मोत्सव आरती, उपनिषद पाठ, आदि के अतिरिक्त स्वामीजी के जीवन पर प्रवचत के साथ मनाया जायगा।

पटना। रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के तत्वावधान में स्वामी विवेकानन्द का जन्मोत्सव विभिन्न प्रतियोगिताओं के आयोजन स्वामीजी के जीवन और संदेश पर विभिन्न विद्वानों के प्रवचनों के साथ मनाया जायगा।

छपरा। रामकृष्ण आश्रम, छपरा में १३ जनवरी को स्वामी विवेकानन्दजी की जयन्ती मनायी जायगी। इस अवसर पर १५ जनवरी को रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के स्वामी ब्रह्मेशानन्दजी महाराज का स्थानीय नगर भवन में "स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता" विषय पर प्रवचन होगा।

श्री रामकृष्णदेव का १५०वाँ जयन्ती महोत्सव

रायपुर, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में श्रीरामकृष्णदेव का १५०वाँ जयन्ती महोत्सव २१ फरवरी को मनाया जायगा। २४ फरवरी ८५ को संध्या ५ बजे सत्संग भवन में, इस अवसर पर एक सार्वजनिक सभा होगी जिसमें मनीषियों के प्रवचन होंगे।